वृष्टिगर्भ और उसके विविध आयाम

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

1. **वृष्टिगर्भविवेचन-**

जब सन्तप्त वायु पर्याप्त जलवाष्प लेकर सुसम्पृक्त होती है तब पृथिवी पर वायुमण्डल में वृष्टिकारक मेघों की उत्पत्ति होती है। जब वायु में जलवाष्प सम्पृक्ति योग्य मात्रा में नहीं होती है तब केवल न बरसने वाले, विविध रूपों वाले मेघ ही दिखाई पड़ते हैं। वृष्टि करने वाले मेघों में वायु के द्वारा धारण की गई सम्पृक्त जलवाष्प की मात्रा ही वृष्टिगर्भधारण कहलाती है। इसके विविध आयामों की चर्चा आगे की जा रही है-

2. **वृष्टिगर्भाधानकाल-**

यद्यपि किसी भी समय समुचित तापमान पर वृष्टिगर्भ का आधान सम्भव है तथापि सामान्यतः चतुर्मास्य वृष्टि में बरसने वाले मेघों का गर्भधारण कार्तिक शुक्लपक्षे के बाद होता है। गर्भाधान के विषय में आचार्यों में मत-मतान्तर हैं। किसी का मत है कि कार्तिक शुक्लपक्ष पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं।

किन्तु गर्ग, कश्यप आदि अन्य प्रमुख आचार्य वृष्टिगर्भ के आधान का काल मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष के पूर्वाषाढा नक्षत्र में चन्द्र के आने पर मानते हैं। आचार्य वराहमिहिर के अनुसार, मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित हो उस समय से गर्भों का लक्षण जानना चाहिए।

भद्रबाहुसंहिता के अनुसार मार्गशीर्ष की अमावस्या को जिस दिन चन्द्रमा ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होता है, मेघ गर्भ धारण करते हैं अथवा मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को जबकि चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में होता है, मेघ गर्भ धारण करते हैं।

मेघ गर्भ धारण करने के छः महीने पश्चात् वर्षा करते हैं-

षण्मासं समतिक्रम्य ततो देवः प्रवर्षति।

गर्भाधान, वर्षा आदि के महीनों का निश्चय करना चाहिए। तीन महीनों तक गर्भ की पक्वक्रिया होती है और तीन महीने वर्षा के होते हैं।

पूर्व, उत्तर और ईशान कोण में जो मेघ गर्भधारण करते हैं, वे जल की वर्षा करते हैं तथा फसल भी उत्तम होती है-

पूर्वामुदीचीमैशानीं ये गर्भा दिशमाश्रिताः।

ते सम्यवन्तस्तोयाद्यास्ते गर्भास्तु सुपूजिताः।।

वायव्यकोण और पश्चिम दिशा में जो मेघ गर्भधारण करते हैं, उनमें मध्यम जल की वर्षा होती है और अनाज की फसल उत्तम होती है-

वायव्यामथ वारुण्यां ये गर्भा स्त्रवन्ति च।

ते वर्ष मध्यमं दद्युः सस्यसम्पदमेव च।।

दक्षिण दिशा में मेघ गर्भ धारण करें तो सामन्यतः शिष्टता, सुभिक्ष समझना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं है तथा इस प्रकार मन्दगति वाले मेघ सर्वत्र पूजे भी जाते हैं-

शिष्टं सुभिक्षं विज्ञेयं जघन्या नात्र संशयः।

मन्दगाश्च घना वा च सर्वतश्च सुपूजिताः।।

3. **वृष्टिगर्भविपाकावधि-**

प्रायः जिस नक्षत्र पर अधिष्ठित चन्द्रमा के काल में वृष्टिगर्भ की स्थिति होती है, चन्द्रमा के वश 195वें दिन उसका प्रसव होता है।

यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि चान्द्रमान से 195 दिन लेने से उस दिन वह नक्षत्र नहीं आता है। अतः सावन मान से 195 वाँ दिन लेना चाहिए। सावन मान से 195 वें दिन में ठीक वही नक्षत्र आता है। इस सम्बन्ध में समाससंहिता में कहा गया है।

भद्रबाहुसंहिता के अनुसार सात-सात महीने और सात-सात दिन में गर्भ पूर्ण परिपाक अवस्था को प्राप्त होता है। जिस प्रकार का गर्भ होता है, उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है-

सप्तमे सप्तमे मासे सप्तमे सप्तमेऽहनि।

गर्भाः पाकं विगच्छन्ति यादृशं तादृशं फलम्।।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

वृष्टिगर्भप्रसवकाल-

यदि गर्भ शुक्लपक्ष में हो तो कृष्णपक्ष, कृष्णपक्ष में हो तो शुक्लपक्षे में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में, पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौषशुक्ल में स्थित गर्भ मन्दफल देने वाला होता है। यहाँ पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से मास ग्रहण करना चाहिए, जैसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख कृष्ण अमान्त तक एक मास, वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से ज्येष्ठ कृष्ण अमान्त तक दूसरा मास इत्यादि। यदि पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्र शुक्ल में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव होता है।

सूर्य दक्षिणगोल में ही हो चुका हो ऐसे समय में जिस नक्षत्र पर पहिले लिखे हुए वायु, बादल आदि पाँच प्रकार से गर्भस्थिति हो जाए तो उसी नक्षत्र पर चन्द्रमा के आठवीं बार आने पर वर्षा होती है।

यदि वायु, जल, विद्युत, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ हो तो प्रसवकाल में बहुत वृष्टिप्रद होता है। इस तरह के गर्भसमय में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती है।

4. **वृष्टिगर्भ के वर्षण में दिग्विपर्यय और वायुविपर्यय-**

बृहत्संहिता में कहा गया है कि गर्भकाल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसवकाल में पश्चिम दिशा में, पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में हो तो उत्तर दिशा में, उत्तर दिशा में हो तो दक्षिण दिशा में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैऋत्य कोण में और गर्भकाल में नैऋत्यकोण कोण में मेघ हो तो प्रसवकाल में ईशान कोण में मेघ होता है। इसी तरह वायु का भी दिग्वैपरीत्य समझना चाहिए। जैसे गर्भकाल में पूर्व तरफ की वायु हो तो प्रसवकाल में पश्चिम तरफ का इत्यादि समझना चाहिए।

5. **वृष्टिगर्भसम्भवलक्षण-**

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

गर्भस्थिति काल में आह्लादजनक, सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध और श्वेत परिवेष से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृत और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुराकार और लोहित मेघों, काक के अण्डे के समान, मयूर के कण्ठ के समान, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनु, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा सन्ध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में स्थित पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तरमार्ग में होकर निर्मल उत्पातरहित ग्रहों का गमन, बाधारहित वृक्षों का अङ्कुर, मनुष्य और पशु हर्षित, इन सब गुणों से युत गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट होता है।

गर्भ के पोषण (दोहद) काल में अर्थात् उष्णकाल में उत्तर, ईशान और पूर्व की वायु चले और वह वायु कोमल और हृदय को प्रसन्नता देती हुई हो तो इससे गर्भ पुष्ट होता है तथा सूर्य और चन्द्रमा के चौतरफा सफेद, चिकना और बड़ा मण्डल हो तो वह गर्भ को पुष्ट करने वाला है।

बिजलियाँ, इन्द्रधनुष, धीमी गर्जना और सूर्य के बिम्ब के आगे छोटे-छोटे वृत्त मण्डल के होने से, तथा स्निग्ध फैले हुए बड़े-बड़े बादलों के होने से और कभी साफ चन्द्रमा वाले आकाश के दिखाई देने से भी गर्भ पुष्ट हुआ समझना चाहिए।

रवि, भौम, बुध आदि ग्रहगण भी स्निग्ध गति के हों अर्थात् इनके तारों का प्रकाशन खूब चमकीला एवं स्निग्ध हो और ग्रहण से युक्त न हो तथा सूर्य के दक्षिण की तरफ इनकी गति हो तो ये भी गर्भ को पुष्ट करने वाले होते हैं। इसी तरह यदि पशु-पक्षीगण भी स्वभाव से ही बिना घबराये हुए की तरह सुन्दर आवाज करते हों और प्रसन्न दिखाई दें, तो गर्भ पुष्ट हुआ समझना चाहिए।

6. **ऋतु के वश गर्भलक्षण-**

पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्या रक्त और परिवेष युत मेघ शुभ होता है तथा मार्गशीर्ष में अल्पशीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता है। माघ मास में प्रबल भयङ्कर वायु, सूर्य ओर चन्द्र हिम युक्त होके मलिन कान्ति वाले, अति शीत और मेघ रहित सूर्य का उदयास्त शुभ है। फाल्गुन मास में रुक्ष और भयङ्कर वायु, मेघों का उदय, सूर्य और चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेष, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ है। चैत्र मास में वायु, मेघ, वृष्टि और परिवेष युत गर्भ शुभ होता है। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत् और मेघ के गर्जन युत गर्भ शुभ होता है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

ऋतुओं के स्वभावजनित और सामान्य लक्षणों से युत गर्भ की वृद्धि अन्यथा हानि होती है।

7. **गर्भकालिक मेघों के लक्षण-**

मोती या चाँदी के समान श्वेत अथवा तमाल वृक्ष, नीलकमल या अञ्जन के समान अति कृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले गर्भकालिक मेघ हों तो बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अति भयङ्कर सूर्य किरण से तापित, अल्प वायु से युत गर्भकालिक मेघ 195वें दिन प्रसवकाल में रुष्ट की तरह होकर धाराप्रवाह अतिवृष्टि करते हैं।

8. **वृष्टिगर्भपोषक नक्षत्र-**

सब ऋतुओं में पूर्वाभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, रोहिणी, इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसवकाल में अधिक वृष्टि करता है।

शतभिषा, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती या मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता है।

भद्रबाहुसंहिता में भी इस सम्बन्ध में चर्चा प्राप्त होती है। इसके अनुसार यदि पुष्य, हस्त, अभिजित, अश्विनी-इन नक्षत्रों में गर्भधारण हो तो शुभ होता है। आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल-इन नक्षत्रों में गर्भधारण का कार्य हो तो उत्तम जल की वर्षा होती है।

स्वाती, अनुराधा, श्रवण और शतभिषा-इन नक्षत्रों में मेघ गर्भधारण करें तो अधिक जल की वर्षा होती है।

9. **गर्भनाश के लक्षण-**

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन, भूकम्प, गन्धर्वनगर, नाभस, कीलक आदि केतुओं का दर्शन, ग्रह युद्ध, निर्घात, रुधिर आदि की विकार युत वृष्टि, परिघ, इन्द्रधनु, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन गर्भ नाश करने वाले होते हैं।

यदि गर्भसमय में निमित्त रहित अतिवृष्टि हो तो गर्भ का नाश होता है। तथा यदि पच्चीस पल या उससे अधिक वृष्टि हो तो गर्भस्राव हो जाता है।

कार्तिक शुक्ल द्वादशी की रात्रि में बिजली वर्षा, गर्जना तथा पचरंगी बादलों के होने से गर्भ का रजःपात समझना चाहिए।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

रेवती के सूर्य में अर्थात् चैत्र में वर्षा हो जावे और रेवती के आगे के अश्विनी आदि दश नक्षत्रों में नहीं होवे तो गर्भपात समझना चाहिए-ऐसा नारद ऋषि का मत है।

पौष महीने में यदि गर्भ के कुछ लक्षण दिखाई न दें तो वर्षा ऋतु में वर्षा का सर्वथा अभाव होता है, यह ज्योतिषियों का मत है।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक वर्षा न होवे तो कार्तिक से माघ का गर्भ स्थिर समझना चाहिए। और, यदि अतिवृष्टि होवे तो गर्भपात समझना चाहिए।

गर्भनाश करने वाले उत्पात तीन प्रकार के हैं। पार्थिव, आन्तरिक्ष्य और दिव्य। इन निम्नलिखित उत्पातों के होने से गर्भ का स्त्राव हो जाता है, अथवा समय पर नहीं बरसता या कम बरसता है इत्यादि। वे उत्पात ये हैं-भूकम्प, उल्कापात, रजोवृष्टि, दिग्दाह, खपुर, केतु, ग्रहयुद्ध, निर्घात, परिघ, धनु, सूर्य-चन्द्रमा का ग्रहण तथा गर्भमास के चिह्नों का बदल जाना।

इन सभी का संक्षिप्त परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है-

10.1 भूकम्प-

भूकम्प ऐन्द्र, वारुण, वायव्य और आग्नेय होते हैं जिनमें से केवल ऐन्द्र भूकम्प होने का साधारण कारण है कि-राहु से सातवें मंगल होने पर, मंगल से पाँचवें बुध होने पर और बुध से चौथे चन्द्रमा होने पर भूकम्प होता है-

तमसः सप्तमे भौमे भौमात् पञ्चमगे बुधे।

बुधाच्चतुष्टये चन्द्रे भूकम्प इति दिग्विधिः।।

10.2 उल्का-

स्वर्ग में शुभ फल भोगकर गिरते हुए प्राणियों का स्वरूप उल्का है। धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली, तारा ये पाँच उल्का के भेद हैं-

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः।

धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः।।

जब उल्का का पतन होता है तो इसका फल 15 दिन में, धिष्ण्या भी 15 दिन में, अशनि 45 दिन में, बिजली और तारा 6 दिन में अपना शुभाशुभ फल देते हैं।

E-learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

तारा का जो प्रमाण है उससे लम्बाई में दुगुना धिष्ण्य होता है। विद्युत् नाम वाली उल्का बड़ी, कुटिल, टेढ़ी-मेढ़ी और शीघ्रगामिनी होती है। अशनि नाम की उल्का चक्राकार होती है।

जिस समय आकाश में इन्द्रधनुष की आकृतिवाली उल्का उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है तो मेघों का विनाश कर देती है।

10.3 दिग्दाह-

सूर्य से छठी राशि पर मंगल हो और पाँचवें या सातवें स्थान पर चन्द्रमा हो तो यह योग दिग्दाह पैदा करने वाला समझना चाहिए। यह दिग्दर्शन के नाम से माना गया है। सायंकाल और प्रातःकाल लाल रंग वाला दिग्दाह होता हो और उलटी हवा चलती हो तो इससे धान्य का नाश होता है। अन्य वर्ण का भी दिग्दाह होता हो तो वह अशुभ ही है।

10.4 खपुर-

आकाश में किसी पुर के समान अनेक रंग और आकृतिवाला तथा पताका, ध्वजा, और तोरणों से युक्त जो गन्धर्वनगर दिखलाई देता है वह खपुर कहलाता है।

10.5 केतु-

कभी-कभी आकाश में विकीर्ण तेज वाले प्रकाशन पिण्ड दिखाई दिया करते हैं, ये ही पिण्ड केतु कहलाते है। ये केतु हजार माने गए हैं। इनकी निम्मलिखित 19 जातियाँ हैं-किरण, आग्नेय, मृत्यद, पार्थिव, सोमज, ब्रह्मदण्ड, विसर्पक, तस्कर, कोङ्कुम, कील, कनक, विकच, अरुण, विश्वरूप, गणक, ब्रह्मज, कङ्क, कबन्ध और विपुल। मोती की माला, सोना, कमल की जड़, चाँदी और स्फटिकमणि की प्रभावाले तथा शिखावाले 25 तरह के किरण केतु होते हैं। बन्धुजीव, अग्नि और लाख की कान्तिवाले, लाल, चमकदार, विचूली (बिना चोटी के) आकाश से अग्नि उगले हुए आग्नेय केतु भी 25 प्रकार के होते हैं। रूखे, बाँकी शिखा वाले, काले रंग के मृत्युद केतु 25 प्रकार के होते हैं। पार्थव केतु गोल, विचूली और तैल-जल के समान कान्ति वाले 22 प्रकार के होते हैं। बरफ, चन्द्रमा, कुन्द ओर चाँदी की सी आभावाले तीन केतु सौम्य होते हैं और शुभ हैं। क्रूर तो केवल ब्रह्मदण्ड केतु है जो तीन शिखा वाला एवं तीन वर्ण का होता है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

उत्तर में सौम्य केतु, ईशान कोण में भौम, दक्षिण में मृत्युद ओर अग्निकोण में आग्नेय केतु होते हैं। पूर्व और पस्चिम में किरण केतु का उदय होता है। विसर्पक 84 मोटे तारों का झुण्ड होता है। ये ज्योतिवाले, श्वेत, स्निग्ध, प्रसन्न और तीन आकार वाले होते हैं। कनक जाति के 60 होते हैं, इनके दो चोटी वाले सात तारे होते हैं। ये किरण वाले, स्निग्ध और घोर तथा कष्ट देने वाले होते हैं। विकच जाति के 65 होते हैं। ये शिखारहित, किरणों से आवृत, शरीरवान, श्वेत, स्निग्ध, प्रसन्न और तारों के एक ही झुण्ड में होते हैं। तस्कर 51 होते हैं। ये दीर्घ, रूखे, श्वेत होते हैं और अरुन्धती की तरह अस्पष्ट होते हैं तथा किरणों से घिरे रहते हैं। कौङ्कुम केतु 60 हैं। इनमें तीन तारे होते हैं और ये त्रिशिख तथा अग्निप्रभा वाले खराब, लाल और लाल ही किरण वाले होते हैं।

कीलक 33 होते हैं। इनका आखिरी हिस्सा काला होता है तथा ये दारुण और काली किरण के होते हैं। सूर्य ओर चन्द्र के मण्डल में ये दिखाई देते हैं। विश्वरूप केतु 120 होते हैं। ये लाल, दीप्त, विचूली, ज्वाला वाले तथा आकाश से अग्नि को उगलते हुए ओर अग्नि की आभा वाले दिखाई देते हैं। विना तारा के चामर की सी आकृति वाले रूखे, इधर, उधर फेंकी हुई किरणों वाले, वातरूप, काले और लाल से रंगवाले 75 संख्या के अरुण केतु होते हैं। गणकेतु आठ होते हैं। ये तारा समूह की तरह एक मण्डल में स्थित रहते हैं। ब्रह्मज केतु 204 होते हैं। ये चार कोण के और श्वेत शिखा के होते हैं। कंक नामक केतु 32 होते हैं। ये किरणों को फेंकने वाले, स्निग्ध और चन्द्रमा की सी आभा वाले होते हैं तथा काक की चोंच के समान, बांसो की गुल्मों की आभावाली किरणों से घिरे हुए होते हैं। कबन्ध केतु 96 होते हैं। इनकी किरणें भस्म और कपूर की तरह श्वेत होती हैं। ये केतु भिन्न-भिन्न रूप वाले तारों के पुञ्ज में होते हैं तथा पीले और लाल कबन्ध की तरह दिखाई देते हैं। विपुल नामक केतु 9 होते हैं। इनका श्वेत तारों का एक ही बड़ा पुञ्ज होता है।

10.6 निर्घात-

आपस में पवन से पवन आहत होकर आकाश से पृथिवी पर आती है तब जोर की आवाज होती है, इसी का नाम निर्घात है-

गगनादवनौ याति पवनः पवनाहतः।

घोरं नादं प्रकुर्वाणः स निर्घात इतीर्यते।।

11.**वृष्टि परिमाण-**

प्राचीन भारतीय ऋतुविज्ञानियों ने पल-आढक-द्रोण आदि वृष्टि परिमाणों का वर्णन किया है। पात्रविशेष में आए जल के द्वारा वृष्टि का मापन किया जाता था। वराहमिहिर के अनुसार एक हाथ के तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्तुलाकार कुण्ड से वृष्टि के जल का मापन करना चाहिए, जल से पूर्ण इस कुण्ड में पचास पल तुल्य जल होता है। पचास पल का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है।

कृषिपराशर के अनुसार मुनियों ने आढक का मान एक सौ योजन (चार सौ कोस) लम्बा और तीस योजन (120 कोस) चौड़ा कहा है।

कृषिपराशर के अनुसार ग्रहराशिसंयोजन से निम्न प्रकार से वृष्टि होती है- सूर्य जब कर्क राशि पर हो और चन्द्र मिथुन, मेष, वृष और मीन-इनमें किसी राशि पर हो तो सौ आढक जल होता है। जब सूर्य धनु राशि पर स्थित हो तो जल उसका आधा अर्थात् पचास आढक हो जाता है, जब सूर्य कन्या या मकर राशि पर हो तो अस्सी आढक हो जाता है। कर्क, कुम्भ, वृश्चिक और तुला में से किसी राशि पर सूर्य के होने पर छानवे आढक जल होता है। ऐसा जलविज्ञानी लोग कहते हैं। वर्ष में वर्षा का यह मान समझकर कृषि कर्म करना चाहिए।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन्द्र सदा सम्पूर्ण जल का दस भाग समुद्र पर, छः भाग पर्वत पर और चार भाग पृथिवी पर बरसाते हैं।

वक्ष्यमाण पाँच निमित्तों (वायु, मेघ का शब्द, जल, विद्युत् एवं मेघ) से युत गर्भ, प्रसवकाल में सौ योजन तक बरसता है। चार निमित्तों से युक्त मेघ पचास योजन तक, तीन निमित्तों से युत गर्भ पच्चीस योजन तक, दो निमित्तों से युत गर्भ साढ़े बारह योजन तक और एक निमित्त से युत गर्भ पाँच योजन तक, प्रसवकाल में बरसता है।

पाँचों निमित्तों से युत गर्भ एक द्रोण बरसता है। वायु से युत गर्भ तीन आढक, विद्युत् से गर्भ छः आढक, मेघों से युत गर्भ नौ आढक और मेघों के गर्जन से युत गर्भ प्रसवकाल में बारह आढक बरसता है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

वर्षण के प्रमाण को स्पष्ट करते हुए बृहत्संहिता में कहा गया है कि जिस वृष्टि से पृथिवी पर धुलि मिट जाए या तृणाग्र में जलकण दिखाई दें उससे जल का प्रमाण समझना चाहिए-

येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दवस्तृणाग्रेषु।

वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम्।।

कश्यप आदि मुनियों का अभिमत है कि प्रवर्षणकाल (ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर पूर्वाषाढा आदि सत्ताईस नक्षत्रयुत काल) में किसी एक प्रदेश में भी वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है। देवल आदि मुनियों का मत है कि यदि प्रवर्षणकाल में कम से कम दश योजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है। गर्ग, वशिष्ठ और पराशर का मत है कि प्रवर्षणकाल में बारह योजन तक वृष्टि होने से वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है।

प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में फिर फिर वृष्टि होती है। यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है।

हस्त, पूर्वाषाढा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्र में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में सोलह द्रोण वृष्टि होती है। इसी तरह शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाती में चार द्रोण, कृत्तिका में दश द्रोण, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी और मूल में चौदह द्रोण, पूर्वफाल्गुनी में पचीस द्रोण, पुनर्वसु में बीस द्रोण, विशाखा और उत्तराषाढा में बीस द्रोण, आश्लेषा में तेरह द्रोण, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफाल्गुनी और रोहिणी में पचीस द्रोण, पूर्वभाद्रपद और पुष्य में पन्द्रह द्रोण, अश्विनी में बारह द्रोण, अश्विनी में बारह द्रोण तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अठारह द्रोण वृष्टि होती है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi